मूलाचार में वर्णित आचार-नियम : श्वेताम्बर आगम साहित्य के परिप्रेक्ष्य में

- डॉ. अरुणप्रताप सिंह *

जैनधर्म में आचार पक्ष पर सर्वाधिक बल दिया गया है। इसके दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र, जिन्हें मोक्ष-मार्ग कहा गया है, की त्रिपुटी में सम्यक्-चारित्र का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। सम्यक्-चारित्र ही आचार है। ज्ञान एवं श्रद्धा जब तक व्यवहार जगत् की कसौटी पर खरे नहीं उतरते, अपूर्ण माने गये हैं।

मूलाचार जिसमें मुख्यतः आचार-नियम वर्णित हैं, दिगम्बर परम्परा का सर्वमान्य ग्रन्थ माना जाता है, यद्यपि यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रमाण हैं कि यह मूलरूप से दिगम्बर परम्परा का ग्रन्थ न होकर यापनीय परम्परा का रहा होगा। यापनीय परम्परा एक ओर दिगम्बरों के समान मुनि की नग्नता पर बल देती थीं, तो दूसरी ओर श्वेताम्बरों के अनुरूप आगमों को एवं स्त्री-मुक्ति की अवधारणा को स्वीकार करती थीं। मूलाचार के कर्ता को भी स्त्री-मुक्ति की अवधारणा और साथ ही श्वेताम्बर आगम साहित्य में समान रूप से विश्वास था। यापनीय श्वेताम्बर आगम साहित्य से परिचित थे। अतः श्वेताम्बर आगमों का उनके साहित्य में प्रतिबिम्बित होना स्वाभाविक है। प्रस्तुत लेख में यह बताने का प्रयास किया गया है कि मूलाचार में श्वेताम्बर आगम ग्रन्थों की सामग्री किस प्रकार समाहित है। साथ ही आचार-नियम के सन्दर्भ में श्वेताम्बर अवधारणाओं (concepts) से उनकी साम्यता एवं विषमता का भी अवलोकन किया गया है।

मूलाचार 12 अधिकारों (अध्यायों) में विभक्त है।

इसका प्रथम अधिकार **मूलगुणाधिकार** है। मूलगुणों का पालन करना प्रत्येक श्रमण का प्रथम कर्त्तव्य है। श्रमणजीवन का तात्पर्य मूलतः पापकर्मों से विरत रहना है -- इस सन्दर्भ में इन मूलगुणों का जो कि व्रतों से सम्बन्धित हैं, विशेष महत्त्व है। मूलाचार में श्रमण के 28 मूलगुण बताये गये हैं -- 5 महाव्रत, 5 समितियों का सम्यक्-पालन, 5 इन्द्रियों का संयम, षडावश्यक, केशलुञ्चन, आचेलक्य, अस्नान, क्षितिशयन, अदन्तधावन और स्थिति भोजन।[1]

मूलाचार के समान ही श्वेताम्बर ग्रन्थों में भी मूलगुणों की चर्चा है। यहाँ इनकी संख्या 27 है। समवायांग में जो सूची प्राप्त है, वह निम्न है -- पाँच महाव्रत, पाँच इंद्रियों का संयम, चार कषायों का त्याग, क्षमा, विरागता, भावसत्य -- करणसत्य एवं योगसत्य, मन-वचन एवं काया का निरोध, ज्ञान-दर्शन एवं चारित्र से सम्पन्नता, कष्ट सहिष्णुता, मरणान्त कष्ट का सहन करना।[2]

हम देखते हैं कि दोनों परम्पराओं में मूलगुणों का भाव "संयम" ही है। यहाँ संख्या भेद का कोई महत्त्व नहीं है -- अन्तर केवल उनकी बाह्य एवं आन्तरिक शुद्धता को लेकर है। जहाँ मूलाचार आचरण के बाह्य नियमों पर बल देता है, वहीं श्वेताम्बर ग्रन्थ आचरण की आन्तरिक विशुद्धता पर। मूलगुणों के सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अन्तर नग्नता को लेकर है। श्वेताम्बर परम्परा को, जो वस्त्र को मोक्ष-मार्ग में बाधा नहीं मानती, अपने ग्रन्थों में नग्नता को मूलगुणों के अन्तर्गत रखने का कोई औचित्य ही नहीं था। मूलाचार उस परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ निर्वस्त्रता मुनि के आचरण का एक प्रमुख पक्ष था परन्तु यहाँ द्रष्टव्य है कि मूलाचारकर्ता इस सम्बन्ध में अधिक कठोर रूख नहीं अपनाता। मूलाचार अपरिग्रह महाव्रत के पालन में "सक्कच्चागो" (शक्त्या त्यागः) अर्थात् अपनी शक्ति के अनुसार नियम के पालन का उपदेश देता है।[3] इसके विपरीत दिगम्बर परम्परा में नग्नता को अधिक महत्ता प्रदान की गई और यह कहा गया कि तीर्थंकर भी यदि वह वस्त्ररहित नहीं है, मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता।[4] स्पष्टतः मूलाचार निर्वस्त्रता को उतनी अधिक महत्ता प्रदान नहीं करता जितनी कि दिगम्बर परम्परा के अन्य ग्रन्थ करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बृहत्प्रत्याख्यानसंस्तरस्त्वाधिकार मूलाचार का द्वितीय अधिकार है। इस अधिकार में मुख्यतः संलेखना सम्बन्धी चर्चा है। इस अधिकार की अधिकांश गाथाएँ आउरपच्चक्खाण (आतुरप्रत्याख्यान) एवं महापच्चक्खाण (महाप्रत्याख्यानयक) नामक श्वेताम्बर प्रकीर्णकों से ली गई है। इन गाथाओं में भाषा एवं भाव दोनों दृष्टियों से अत्यधिक समानता है। इनमें जो शाब्दिक अन्तर परिलक्षित होता है, वह अधिकांश रूप से महाराष्ट्री और शौरसेनी प्राकृत के अन्तर के कारण है। हम यहाँ कुछ उदाहरणों द्वारा इस तथ्य को स्पष्ट करेंगे--

(1) *सव्वं पाणारंभं पच्चक्खामि अलीयवयणं च।*
सव्वमदत्तादाणं मेहूण परिग्गहं चेव।।
- मूलाचार, 2/41

सव्वं पाणारंभं पच्चक्खामी य अलियवयणं च।
सव्वमदिन्नादाणं अब्बंभ परिग्गहं चेव।।
- महाप्रत्याख्यान, गाथा 33, पृ. 167

(2) *खमामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।*
मित्ती में सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केणवि।।
- मूलाचार, 2/43

खामेमि सव्वे जीवे, सव्वे जीवा खमंतु में।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणइ।।
- आतुरप्रत्याख्यान, गाथा 8, पृ. 160

(3) *एओ मे सस्सओ अप्पा णाणदंसणलक्खणो।*
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा।
- मूलाचार, 2/48

एगो मे सासओ अप्पा, नाणदंसणसंजुओ।
सेसा मे बाहिरभावा सव्वे संजोगलक्खणा।।
- आतुरप्रत्याख्यान, गाथा 29, पृ. 163

(4) *संजोयमूलं जीवेण पत्तं दुक्खपरंपरं।*
तम्हा संजोयसंबंधं सव्वं तिविहेण वोसरे।।
- मूलाचार, 2/49

संजोगमूला जीवेण पत्ता दुक्खपरंपरा।
तम्हा संजोगसंबंधं सव्वं तिविहेण वोसिरे।।
- आतुरप्रत्याख्यान, गाथा 30, पृ. 162

इस द्वितीय अधिकार का नमस्कार श्लोक भी महाप्रत्याख्यान से ही लिया गया है। दोनों की समानता दर्शनीय है--

सव्वदुक्खप्पहीणाणं सिद्धाणं अरहदो णमो
सद्दहे जिणपण्णतं पच्चक्खामि य पावयं
- मूलाचार, 2/37

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वदुक्खपहीणाणं सिद्धाणं अरहओ नमो।
सद्दहे जिणपन्नतं पच्चक्खामि य पावगं।।
- महाप्रत्याख्यान, गाथा 2, पृ. 164

इस प्रकार इस अधिकार की और भी अनेक गाथाएँ इन श्वेताम्बर प्रकीर्णकों से तुलनीय हैं --

मूलाचार की 2/39 महाप्रत्याख्यान की गाथा 3 से
मूलाचार की 2/40 महाप्रत्याख्यान की गाथा 4 से
मूलाचार की 2/44 महाप्रत्याख्यान की गाथा 5 से
मूलाचार की 2/45 महाप्रत्याख्यान की गाथा 10 से
मूलाचार की 2/46 महाप्रत्याख्यान की गाथा 11 से
मूलाचार की 2/50 महाप्रत्याख्यान की गाथा 12 से
मूलाचार की 2/51 महाप्रत्याख्यान की गाथा 18 से
मूलाचार की 2/55 महाप्रत्याख्यान की गाथा 8 से
मूलाचार की 2/56 महाप्रत्याख्यान की गाथा 22 से
मूलाचार की 2/98 महाप्रत्याख्यान की गाथा 108 से

तृतीय अधिकार, जो **संक्षेपप्रत्याख्यानसंस्तरस्त्वधिकार** के नाम से जाना जाता है, की भी अधिकांश गाथाएँ महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णक से ली गई हैं। इसका प्रारम्भिक श्लोक जो कि जिनवन्दना है, महाप्रत्याख्यान से तुलनीय है।

एस करेमि पणामं जिणवसहस्स वड्ढमाणस्स
सेसाणं च जिणाणं सगणगणधराणं च सव्वेसिं

सव्वं पाणारंभं पच्चक्खामि अलीयवयणं च
सव्वमदत्तादाणं मेहूणपरिग्गहं चेव
- मूलाचार, 3/108-109

एस करेमि पणामं तित्थयराणं अणुत्तरगईणं।
सव्वेसिं च जिणाणं सिद्धाणं संजयाणं च।।

सव्वं पाणारंभं पच्चक्खामी य अलियवयणं च।
सव्वमदिन्नादाणं अब्बंभ परिग्गहं चेव।।
- महाप्रत्याख्यान, गाथा सं. क्रमशः 1,33

इसी प्रकार इस अधिकार की कुछ और गाथाएँ अन्य श्वेताम्बर प्रकीर्णकों से तुलनीय हैं --

णित्थ भयं मरणसमं जम्मणसमयं ण विज्जदे दुक्खं।
जम्मणमरणादंक छिंदि ममत्तिं सरीरादो।।
- मूलाचार, 3/119

नत्थि भयं मरणसमं, जम्मणसरिसं न विज्जए दुक्खं।
जम्मण मरणायंकं छिंद ममत्तं सरीराओ।।
- संथारग प्रकीर्णक, गाथा, 2448, पृ. 289

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगं पंडियमरणं छिंदइ, जाईसयाणि बहुगाणि।
तं मरणं मरिदव्वं, जेण मदं सुम्मदं होदि।।
- मूलाचार, 3/117

एक्कं पंडियमरणं छिंदइ, जाईसयाणि बहुयाणि।
तं मरणं मरियव्वं जेण मओ मुक्कओ होइ।।
- मरणविभक्ति प्रकीर्णक, गाथा, 994, पृ. 121

उपर्युक्त द्वितीय एवं तृतीय अधिकारों से उद्घृत कुछ थोड़े से उदाहरणों से स्पष्ट है कि किसी एक ने किसी दूसरे से ग्रहण किया है। सन्दर्भ यह स्पष्ट करते हैं कि मूलाचारकर्ता ने ही इन श्वेताम्बर प्रकीर्णकों से उपयोगी गाथाओं को लेकर अपने ग्रन्थ का निर्माण किया है। प्रथम तो यह है कि इन प्रकीर्णकों की भाषा मूलाचार से प्राचीन है। इसका स्पष्टीकरण हम तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व के अशोक एवं द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के खारवेल के लेखों से कर सकते हैं। दोनों में "ण" की जगह "न" का ही अधिक प्रचलन है[5]। मूलाचारकर्ता "ण" का ही अधिक प्रयोग करता है। दूसरे मूलाचार में स्पष्टतः इन प्रकीर्णकों का नामोल्लेख हुआ है। जिससे इनकी प्राचीनता स्वयं सिद्ध हो जाती है।

चतुर्थ अधिकार समाचार अधिकार है। इसमें मुख्यतः समाचारी का उल्लेख है। मूलाचार में निम्न 10 समाचारियों का उल्लेख है जिनकी समता उत्तराध्ययन से की जा सकती है--

मूलाचार[6]	उत्तराध्ययनसूत्र[7]
इच्छाकार	आवश्यकी
मिथ्याकार	नैषेधिकी
तथाकार	आपृच्छना
आवश्यकी	प्रतिपृच्छना
नैषेधिकी	छन्दना
आपृच्छना	इच्छाकार
प्रतिपृच्छना	मिथ्याकार
छन्दना	तथाकार
निमन्त्रणा	अभ्युत्थान
उपसम्पदा	उपसम्पदा

दोनों परम्पराओं में क्रम के अतिरिक्त इस सम्बन्ध में कोई मूलतः भेद नहीं है। इनका मूल-स्रोत एक ही प्रतीत होता है।

इस समाचारी अधिकार में साध्वियों के नियमों एवं कर्त्तव्यों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इन नियमों से स्पष्ट है कि मूलाचार की परम्परा में साध्वी संघ एक महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में विद्यमान था। जैसा कि हमने पूर्व में कहा था कि यापनीय परम्परा भिक्षु की निर्वस्त्रता पर बल देते हुए भी श्वेताम्बर परम्परा के समान स्त्री-मुक्ति की अवधारणा और साध्वियों को एक वस्त्र धारण करने की अनुमति देती थी। मूलाचार भी स्त्री-मुक्ति की अवधारणा का समर्थक है। इसका निम्न श्लोक द्रष्टव्य है--

एवं विधाणचरियं चरितं जे साधवो य अज्जाओ।
ते जगपुज्जं कित्तिं सुहं च लद्धूण सिज्झंति।।
- मूलाचार, 4/196

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बर परम्परा के विपरीत मूलाचार की यह स्पष्ट अवधारणा उसे यापनीय परम्परा के और निकट ला देती है।

पंचाचार मूलाचार का पंचम अधिकार है। इसमें क्रमशः दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार का वर्णन है। इस अधिकार की अधिकांश गाथाएँ उत्तराध्ययन से तुलनीय हैं।

दुविहा य होंति जीवा संसारत्था य णिव्वुदा चेव।
छद्धा संसारत्था सिद्धगदा णिव्वुदा जीवा।।

- मूलाचार, 5/7

संसारत्था य सिद्धा य दुविहा जीवा वियाहिया।
सिद्धाऽणेगविहा वुत्ता, तं मे कित्तयओ सुण।।

- उत्तराध्ययन, 36/48

पुढवी या बालुगा सक्करा, य उवले सिला य लोणे य।
अय तव तउय सीसय रुप्प सुवण्णे य वइरे य।।
- मूलाचार, 5/9

पुढवी य सक्करा बालुया य उवले सिला य लोणूसे।
अय तम्ब तउय सीसग रुप्प सुवण्णे य वइरे य।।
- उत्तराध्ययन, 36/73

इस प्रकार मूलाचार की 5/10-12 तक की तीन गाथा उत्तराध्ययन की 36वें अध्याय की क्रमशः 74, 75 एवं 76वीं गाथा से शब्दशः तुलनीय हैं तथा मूलाचार की 5/13-17 तक की पाँच गाथाएँ जीव समास नामक श्वेताम्बर ग्रन्थ की क्रमशः 31वीं से 35वीं गाथा तक तुलनीय हैं।

इस अधिकार की 33वीं गाथा द्रष्टव्य है, जिसकी तुलना उत्तराध्ययन के 36वें अध्याय के चौथे एवं दशवें श्लोक के पूर्वार्द्ध से की जा सकती है।

अजीवा विय दुविहा रूवारूवा य रूविणो चदुधा।
खंधा य खंधदेसा खंधपदेशा अणू य तहा।।
- मूलाचार, 5/33

रूविणो चेवऽरूवी य अजीवा दुविहा भवे।।
- उत्तराध्ययन, 36/4

खंधा य खंधदेसा य तप्पएसा तहेव य।।
- उत्तराध्ययन, 36/10

इसी प्रकार उदाहरण-स्वरूप मूलाचार की एक अन्य गाथा भी द्रष्टव्य है, जिसकी तुलना उत्तराध्ययन के दो श्लोकों के प्रारम्भिक पदों से की जा सकती है--

आसाढे दुपदा छाया पुस्समासे चदुप्पदा।
वड्ढदे हीयदे चावि मासे मासे दुअंगुला।।
- मूलाचार, 5/75

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आसाढे मासे दुपया पोसे मासे चउप्पया।।
- उत्तराध्ययन, 26/13

वड्ढए हायए वावी मासेणं चउरं अंगुलं।।
- उत्तराध्ययन, 26/14

इस अधिकार की 5/148, 149, एवं 150 गाथाएँ उत्तराध्ययन के क्रमशः 30/7, 8, एवं 9 से तुलनीय हैं। मात्रभाषा में थोड़ा सा अन्तर परिलक्षित होता है। कुछ और भी उदाहरण द्रष्टव्य हैं --

मूलाचार की 5/155 गाथा उत्तराध्ययन की गाथा 30/26 से
मूलाचार की 5/159 गाथा उत्तराध्ययन की गाथा 30/27 से
मूलाचार की 5/160 गाथा उत्तराध्ययन की गाथा 30/28 से
मूलाचार की 5/162-64 गाथा उत्तराध्ययन की गाथा 30/29-31 से
मूलाचार की 5/176 एवं 85 गाथा उत्तराध्ययन की गाथा 30/32 से
मूलाचार की 5/197 गाथा उत्तराध्ययन की गाथा 30/35 से

इन गाथाओं में भाषा एवं भाव दोनों दृष्टियों से समानता है।

छठा अधिकार **पिण्डशुद्धिअधिकार** है। इसमें विशेषरूप से आहार-शुद्धि का वर्णन है। आहार के प्रकार, आहार की शुद्धता एवं अशुद्धता की जाँच-श्वेताम्बर परम्परा के प्राचीन ग्रन्थों के समान ही वर्णित है। उदाहरणस्वरूप इसमें भिक्षाचर्या की जो विधि बतायी गई है, उसमें भिक्षा के लिए किन क्रमों से गृहों में प्रवेश करना चाहिए इसका उल्लेख है। यह बात उत्तराध्ययन के तप नामक अध्याय में है।

सातवाँ **षडावश्यक** नामक अधिकार है। आश्चर्यजनक रूप से इस अधिकार के प्रारम्भ में ही मूलाचारकर्त्ता यह रहस्योद्‌घाटन करता है कि यह अधिकार आवश्यकनिर्युक्ति को देखकर यथाक्रम संक्षेप (जहाकमं समासेण) में लिखा गया है --

आवासयणिज्जुत्ती वोच्छामि जहाकमं समासेण।
आयरिपरम्पराए जहागदा आणुपुव्वीए।।
- मूलाचार, 7/2

उपर्युक्त गाथा के पश्चात् हमें मूलाचार के संग्रह ग्रन्थ होने में सन्देह नहीं करना चाहिए। चयनकर्त्ता का यह स्पष्टीकरण हमें सारी शंकाओं से मुक्त कर देता है। अधिकार के अन्त में वह पुनः कहता है --

णिज्जुत्ती णिज्जुत्ती एसा कहिदा मए समासेण।
अह वित्थार पसंगोऽणियोगदो होदि णादव्वो।।
आवासयणिज्जुत्ती एवं कधिदा समासओ विहिणा।
जो उवजुंजदि णिच्चं सो सिद्धिं जादि विसुद्धप्पा।।
- मूलाचार, 7/192-193

आठवाँ अधिकार **द्वादशानुप्रेक्षाधिकार** है। इस अधिकार में 12 अनुप्रेक्षाओं की चर्चा है। इनके स्वरूप के सम्बन्ध में तो दोनों परम्पराओं में समानता है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, मरणविभक्ति नामक प्राचीन श्वेताम्बर ग्रन्थ में अनुप्रेक्षाओं का क्रमबद्ध सुव्यवस्थित वर्णन है। इनमें भाव की दृष्टि से मुझे कोई विशेष भेद परिलक्षित नहीं होता। उत्तराध्ययन आदि में भी संसार की दुःखमयता, क्षणिकता, अशरणता आदि का उल्लेख है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनगारभावना नामक 9वें अधिकार में मुनि जीवन के स्वरूप की चर्चा है। भाव की दृष्टि से इस अध्ययन की अधिकांश सामग्री प्राचीन श्वेताम्बर ग्रन्थों में देखी जा सकती है फिर भी, मैं इनके गाथा साम्य को अभी स्पष्ट रूप से खोज नहीं पाया हूँ।

दसवाँ अधिकार **समयसारअधिकार** के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें मुख्य रूप से मुनि आचार का वर्णन है। इस अधिकार में स्थान-स्थान पर अचेलकता की प्रशंसा की गई है। केवल इसी रूप में यह श्वेताम्बर परम्परा से भिन्न है, अन्यथा, इस अधिकार की भी अधिकांश गाथाएँ श्वेताम्बर ग्रन्थों से ली गई प्रतीत होती हैं जो मूलाचार के संकलन ग्रन्थ होने के प्रमाण को पुष्ट करती हैं।

इस अधिकार में 10 श्रमणकल्पों की चर्चा है। कल्प (कप्प) आचार-विचार के नियम से सम्बन्धित हैं। मूलाचार में वर्णित 10 कल्प निम्न हैं-- आचेलक्य, औद्देशिक, शय्यातर, राजपिण्ड, कृतिकर्म, व्रत, ज्येष्ठ, प्रतिक्रमण, मास एवं पर्युषण।[9] श्वेताम्बर परम्परा में भी कुछ क्रम सम्बन्धी अन्तर के साथ कल्पों की यही अवधारणा स्वीकृत है। दिगम्बर परम्परा जहाँ आचेलक्य का अर्थ पूर्ण निर्वस्त्रता से लगाती है, श्वेताम्बर परम्परा उसका अर्थ अल्प वस्त्र से लगाती है अर्थात् मुनि को कम से कम वस्त्र ग्रहण करना चाहिए। पर्युषणकल्प की अवधारणा में भी मूलाचार के टीकाकार श्वेताम्बर परम्परा से दूर हटते प्रतीत होते हैं। टीकाकार ने पर्युषणकल्प से तात्पर्य पंच कल्याण स्थान से माना है।[10] जबकि श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार चातुर्मासकाल में एक स्थान पर रहकर तप, संयम और ज्ञान की आराधना करना पर्युषणकल्प है। चातुर्मास काल में इस कल्प (आचरण) का विशेष महत्त्व है।

इस अधिकार में अब्रह्मचर्य के 10 कारणों का उल्लेख है। ये 10 कारण निम्न हैं -- विपुलाहार, कायशोधन, गन्धमाला का सेवन, गीत, उच्चशय्या, स्त्री-संसर्ग, अर्थ-संग्रहण, पूर्वरति स्मरण, इन्द्रियों के विषयों का सेवन, प्रणीतरवसेवा।[11]

इसकी तुलना उत्तराध्ययन के 16वें अध्याय ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान से की जा सकती है जिसमें अब्रह्मचर्य के कारणों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। इस अधिकार की कई गाथाएँ विशेषावश्यकभाष्य से भी मिलती है।

इस अधिकार में पापश्रमण[12] की कल्पना है। इसकी तुलना उत्तराध्ययन के 17वें अध्याय पापश्रमणीय नामक अध्ययन से की जा सकती है।

ग्यारहवाँ अधिकार **शीलगुणाधिकार** है। इसमें 10 श्रमणधर्मों का उल्लेख है। मूलरूप से इन श्रमणधर्मों का उल्लेख समवायांग में है।

बारहवाँ एवं अन्तिम अधिकार **पर्याप्त्याधिकार** है इसमें छः पर्याप्तियों की चर्चा की गई है। इस सम्बन्ध में सामान्य रूप से श्वेताम्बर एवं दिगम्बर परम्परा में कोई भेद नहीं है। इस अधिकार में शलाकापुरुष (सलागपुरिसा) की चर्चा है। शलाकापुरुष की कल्पना बाद में विकसित हुई है, इस आधार पर भी मूलाचार की प्राचीनता में संदेह उत्पन्न होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मूलाचार में श्वेताम्बर आगम ग्रन्थों से अनेक बातें ली गई हैं। यदि अचेलकत्व और शौरसेनी प्राकृत के अन्तर को नजर-अन्दाज कर दें तो यह एक श्वेताम्बर ग्रन्थ जैसा प्रतीत होता है फिर भी, हमें मूलाचार को यापनीय परम्परा का एक संकलन ग्रन्थ होने में सन्देह नहीं करना चाहिए क्योंकि जहाँ कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में श्वेताम्बर आगम ग्रन्थों का बिल्कुल प्रभाव या उल्लेख नहीं है, वहाँ इसमें यह प्रभाव स्पष्ट देखा जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस सम्बन्ध में अन्य भी प्रमाण दिये जा सकते हैं-- 1. मूलाचार की कुछ गाथाएँ ग्रन्थ में दो-दो बार आयीं हैं और उनमें शाब्दिक रूप से कोई परिवर्तन नहीं है। जैसे --

पाँचवें अधिकार की 54वीं एवं 62वीं गाथा
द्वितीय अधिकार की 77वीं एवं तृतीय अधिकार की 117वीं गाथा
पाँचवें अधिकार की 212वीं एवं दसवें अधिकार की 117वीं गाथा
पाँचवें अधिकार की 167वीं एवं सातवें अधिकार की 87वीं गाथा

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न ग्रन्थों से छिटपुट गाथाएँ नहीं बल्कि गाथा समूह उठाकर एक स्थान पर रख दिया गया है। यह इसके संकलन ग्रन्थ होने का अकाट्य प्रमाण है। यदि यह किसी एक व्यक्ति की रचना होती तो गाथाओं की यह पुनरावृत्ति सम्भव नहीं थी।

2. मूलाचार में भिक्षुओं को कुछ ग्रन्थों को पढ़ने का निर्देश दिया गया है। इसमें "पत्तेयबुद्धिकाथिदं[13]" का उल्लेख है। इससे किस ग्रन्थ का तात्पर्य है टीकाकार आचार्य वसुनन्दि स्पष्ट नहीं कर सकें हैं। इस ग्रन्थ से तात्पर्य स्पष्ट एवं निस्संकोच रूप से उत्तराध्ययन और इसिभासिय (ऋषिभाषित) नामक श्वेताम्बर प्रकीर्णक से लिया जाना चाहिए। ये ग्रन्थ निश्चित रूप से आचारांग आदि की तरह प्राचीन हैSa। ऋषिभाषित में 45 ऋषियों के उपदेश संकलित हैं और प्रत्येक ऋषि को प्रत्येकबुद्ध माना गया है। इसी प्रकार उत्तराध्ययन के अध्यायों को भी प्रत्येकबुद्ध भाषित माना गया है। जैसे-- नमिपव्वज्जा।

3. इसी प्रकार मूलाचार में अस्वाध्यायकाल में कुछ ग्रन्थों को पढ़ने का निर्देश दिया गया है। ये ग्रन्थ भी विचारणीय हैं। गाथा इस प्रकार है --

"आराहणाणिज्जुत्ती मरणाविभत्ती य संगहत्थुदिओ।
पच्चक्खाणावासयधम्मकहाओ य एरिसओ।।
- मूलाचार, 5/82

टीकाकार ने इस गाथा का संदेहास्पद अर्थ निकाला है। टीकाकार ने आराहणाणिज्जुत्ती (आराधनानिर्युक्ति) को एक में कर दिया है, जो कि गलत है। प्रत्येक ग्रन्थ अलग-अलग हैं। मेरी समझ से आराधना से तात्पर्य भगवतीआराधना एवं निर्युक्ति से तात्पर्य आवश्यकनिर्युक्ति आदि से है, जिसका मूलाचार के संकलनकर्त्ता ने कई बार उल्लेख किया है। मरणविभत्ती (मरणविभक्ति) एक प्राचीन श्वेताम्बर प्रकीर्णक है जिसमें संलेखना सम्बन्धी विवरण है। संगह (संग्रह) से आशय संग्रहणीसूत्र से हो सकता है। थुदिओ (स्तुतयः) से तात्पर्य देविदत्थओ (देवेन्द्रस्तवः) नामक प्रकीर्णक से हो सकता है। पच्चक्खाण (प्रत्याख्यान) ग्रन्थों से दो श्वेताम्बर प्रत्याख्यान प्रकीर्णकों -- आतुरप्रत्याख्यान एवं महाप्रत्याख्यान से हो सकता है, जिनकी अनेक गाथाओं को बिना कुछ परिवर्तन किये मूलाचारकर्त्ता ने अपने ग्रन्थ में स्थान दिया है। आवसय (आवश्यक) से तात्पर्य आवश्यकसूत्र से हो सकता है। धम्मकहा (धर्मकथा) से तात्पर्य ज्ञाताधर्मकथा से है।

4. दूसरे अधिकार में मूलाचार चंदयवेज्झ[14] का उल्लेख करता है कि इससे मनुष्य मोक्ष-मार्ग को प्राप्त होता है इसकी भी टीका संदेहास्पद है। मेरी समझ से चन्दयवेज्झ से तात्पर्य "चन्द्रकवेध्य[15]" नामक श्वेताम्बर प्रकीर्णक से है। इसमें मुख्यतः 7 बातें वर्णित हैं जिनका पालन करने पर मोक्ष प्राप्त होना बताया गया है। इन सात बातों में आध्यात्मिक गुरुओं के प्रति सम्मान, गुरु के गुण, शिष्य के गुण, ज्ञान, सुन्दर व्यवहार आदि की चर्चा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपर्युक्त श्वेताम्बर ग्रन्थों का मूलाचार में उल्लिखित होना कुछ आश्चर्यजनक नहीं। श्वेताम्बर आगम चूँकि यापनीय परम्परा को मान्य थे, अतः उन्होंने उसका भरपूर उपयोग अपने ग्रन्थ के लिए किया। कालान्तर में टीकाकार वसुनन्दि ने इन सन्दर्भों की जो दिगम्बर परम्परा मान्य टीका करने का प्रयास किया, वह हास्यास्पद सी हो गई है।

5. मूलाचार की स्त्री-मुक्ति की अवधारणा उसे यापनीय परम्परा के होने का अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत करती है। सद्यः प्रकाशित शाकटायन व्याकरण (जो यापनीय परम्परा का एक प्रमुख ग्रन्थ है) नामक ग्रन्थ में भी स्त्री-मुक्ति की अवधारणा को स्वीकार किया गया है।[16] मूलाचार के अनुसार भी स्त्री-मोक्ष को प्राप्त कर सकती है, परन्तु मूलाचार की इस अवधारणा के विपरीत दिगम्बर परम्परा यह मानती थी कि स्त्री-मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकती। उसे मुक्ति प्राप्त करने के लिए पुनः पुरुष के रूप में जन्म लेना अनिवार्य है। इसी आधार पर वह 19वें तीर्थंकर मल्लीनाथ को (जो श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार स्त्री हैं) पुरुष के रूप में स्वीकार करती है। यही कारण है कि प्रसिद्ध दिगम्बर ग्रन्थ सुत्तपाहुड़ में स्त्री की प्रव्रज्या का ही निषेध किया गया है-- "इत्थीसु णा पावया भणिया"। मूलाचार इसके विपरीत, न केवल स्त्री की प्रव्रज्या का ही विधान करता है, उसके लिए नियम बनाता है, बल्कि उसको मुक्ति प्राप्त करने के योग्य भी मानता है।

उपर्युक्त सन्दर्भों से यह स्पष्ट होता है कि मूलाचार उस परम्परा का ग्रन्थ नहीं है, जिसमें स्त्री की प्रव्रज्या का ही निषेध किया गया हो। मूलाचार की अवधारणाएँ दिगम्बर परम्परा की स्वीकृत अवधारणों से काफी भिन्न और बेमेल दिखायी देती हैं। इसके अतिरिक्त, मूलाचार में श्वेताम्बर परम्परा के ग्रन्थों का अधिक मात्रा में उल्लेख होना यह सिद्ध करता है कि मूलाचार का कर्त्ता इन ग्रन्थों से भिज्ञ था और उन्हें स्वीकार करने में उसे संकोच नहीं था। हम निस्संकोच रूप से कह सकते हैं कि मूलाचार उस परम्परा का ग्रन्थ है, जिसमें मुनि की अचेलकता की प्रशंसा की गई है, साथ ही जिसे स्त्री-मुक्ति की अवधारणा और श्वेताम्बर आगम ग्रन्थ भी मान्य हैं और ऐतिहासिक साक्ष्यों के आलोक में हम जानते हैं कि वह परम्परा यापनीय परम्परा थी।

* प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास विभाग, श्री बजरंग महाविद्यालय, दादरआश्रम, सिकन्दरपुर, बलिया (उ.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. मूलाचार (दो भागों में) प्रकाशन -- माणिकचन्द्र दिगम्बर जैनग्रन्थ माला समिति, हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

    पंचय महव्वयाइं समिदीओ पंच जिणवरुद्दिट्ठा।
    पंचेविंदियरोहा छप्पि य आवासया लोचो।।
    अच्चेलकमण्हाणं खिदिसयणमदंतघंसणं चेव
    ठिदिभोजणेयभत्तं मूलगुणा अठ्टवीसा दु।।

    – मूलाचार, 1/2-3

2. समवायांग, समवाय, 27सूत्र 178
3. जीवणिबद्धाबद्धा परिग्गहा जीवसंभवा चेव।
    तेसिं सक्कच्चागो इयरम्हि य णिम्मओऽसंगो।।

    – मूलाचार, 1/9

4. सुत्तापाहुड़, 23
5. पइण्णयसुत्ताइं,

    महावीर विद्यालय, बम्बई

6. आराहणाणिज्जुत्ती मरणविभत्ती य संगहत्थुदिओ।
    पच्चक्खाणावासयधम्मकाहाओ य एरिसओ।।

    – मूलाचार, 5/82

7. वही, 4/125
8. उत्तराध्ययनसूत्र, 26/2-4
9. मूलाचार, 10/18
10. वही, भाग 2, पृ. 105
11. वही, 10/105
12. वही, 10/68-73
13. वही, 5/80
14. वही, 2/85
15. देखें-- प्रकीर्णक-चन्दयवेज्झ,
16. शाकटायनव्याकरणम्,

    – भारतीय ज्ञानपीठ, प्रकाशन, परिशिष्ट, पृ. 121-127

■

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org